P: ISSN NO.: 2394-0344 RNI No.UPBIL/2016/67980 VOL-3* ISSUE-4*(Supplementary Issue) July- 2018
E: ISSN NO.: 2455-0817 *Remarking An Analisation*

हिन्दी साहित्य में स्त्री–विमर्श की भूमिका

सारांश

भारतीय चिंतन को नयी धार देने में स्त्री विमर्श ने अपनी विशिष्ट भूमिका निभायी है। काल और परिस्थितियों द्वारा उत्पन्न चुनौतियों को समकालीन स्त्री–शक्ति ने अवसरों में बदल दिया है। वर्तमान सन्दर्भों में आधुनिक स्त्री ने जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में अपनी सफलता के दम पर अपनी पहचान बनायी है। स्त्री की बदलती सामाजिक–आर्थिक भूमिका ने परिवार समाज, धर्म, राजनीति, राष्ट्र और संस्कृति से जुड़े पहलुओं पर नए सिरे से सोचने को प्रेरित किया है। हिन्दी साहित्य में भी आज स्त्री–विमर्श से जुड़े प्रश्न केन्द्र में है।

मुख्य शब्द : स्त्री अस्मिता, स्त्री–विमर्श, भारतीय चिंतन।

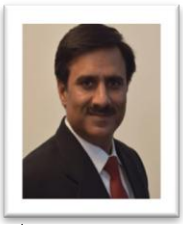

वीरेन्द्र भारद्वाज
एसोसिएट प्रोफेसर
शिवाजी कॉलेज
दिल्ली विश्वविद्यालय
दिल्ली

अशोक कुमार मीणा
असिस्टेंट प्रोफेसर
शिवाजी कॉलेज
दिल्ली विश्वविद्यालय
दिल्ली

प्रस्तावना

समकालीन सन्दर्भों में स्त्री अस्मिता का मुद्दा अपने चरम पर दिखाई देता है। स्त्री को आधी आबादी की संज्ञा दे दिये जाने के बावजूद भी उसके अधिकार वास्तव में उसकी समानता को छू नहीं पाये हैं। भारतीय समाज में रूढ़ समस्याओं एवं स्त्री की दोयम दर्जे की स्थिति के कारण अलग–अलग तरीके से समाज में उसे अपनी भूमिकाओं के लिए तैयार किया जाता है। ''औरत की मौजूदा अधीनता, अपरिवर्तनीय जैविक असमानताओं से नहीं पैदा होती हैं बल्कि यह ऐसे सामाजिक–सांस्कृतिक मूल्यों, विचारधाराओं और संस्थाओं की देन है जो महिलाओं की वैचारिक तथा भौतिक अधीनता को सुनिश्चित करती है। इसलिए नारीवादी विचारक लिंग–भेद आधारित काम, यानी लिंग के आधार पर श्रम विभाजन और उससे भी ज्यादा आधारभूत स्तर पर, यौनिकता और प्रजनन के प्रश्न को एक ऐसे विषय के रूप में देखते हैं जिसे 'जैविक संरचना' जो प्राकृतिक और इसलिए अपनिवर्तनीय मानी जाती है कि दायरे से बाहर रखकर देखा जाना चाहिए।''[1] दरअसल किसी शिशु को पैदा होते समय यह नहीं पता होता की वह नारी है या पुरुष। जैविक रूप से शिशु के स्त्री अंग को लेकर पैदा होने के साथ समाज बिन्दी लगाकर, चोटी बाँधकर, घर की चौखट लांघने पर पाबन्दी लगाकर एवं रसोई बनाना सिखाकर लिंग की कृत्रिम धारणा और विभाजक रेखा खींच देता है।

अध्ययन का उद्देश्य

भारतीय चिंतन के एतिहासिक परिप्रेक्ष्य में स्त्री–विमर्श की भूमिका, उसके संघर्ष एवं उसकी अस्मिता से जुड़े प्रश्नों को रेखांकित करते हुए वर्तमान संदर्भ में परिवार, समाज और राजनीति के क्षेत्र में आए बदलावों को हिंदी साहित्य के माध्यम दिखाया है। साथ ही शिक्षा और आत्मनिर्भरता के परिणामस्वरुप स्त्री जीवन के विकास और सशक्तिकरण को भी 'हिंदी साहित्य में स्त्री–विमर्श की भूमिका' शोध–पत्र में प्रस्तुत किया है।

भारतीय समाज में स्त्रियों ने कभी कुप्रथाओं और रूढ़ियों से मुक्ति के लिए संघर्ष किया है तो कभी राष्ट्रीय स्वाधीनता संग्राम में सहगामी की भूमिका भी निभाई है। आशारानी व्होरा ने इस संदर्भ में लिखा है कि ''हमारे यहाँ मुक्ति का अर्थ पश्चिम के अर्थ में पुरुषों की सत्ता से मुक्ति कभी नहीं रहा। राज्य व देश की स्वतंत्रता का प्रश्न जब–जब सामने आया, पुरुषों की अनुपस्थिति में स्वयं सिर पर जिम्मेदारी से शत्रुओं को ललकारने में महिलाएँ पीछे नहीं हटी।''[2] इस तरह स्त्रियों का अपनी अस्मिता के लिए संघर्ष कभी जागरण का पर्याय रहा है तो कभी प्रगति और विद्रोह का बिगुल बजाने वाला मंत्र। आज हम देख रहे हैं कि अनेक सामाजिक व राजनीतिक संगठन स्त्रियों के अनछुए पहलुओं को लेकर चर्चाएँ करने लगे हैं, जिससे स्त्री का पुरुष और समाज के साथ संबंध नए सिरे से परिभाषित होने लगा है।

भारतीय ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में लोपामुद्रा, अपाला, घोषा, गार्गी, मैत्रयी, सूर्या, देवयानी, शची, शाश्वती, श्रद्धा, कामायनी आदि स्त्रियों का विद्वत्तापूर्ण दार्शनिक–आध्यात्मिक चिंतन भारतीय नारी के लिए अपार संभावनाओं से युक्त

रहा है। प्रागैतिहासिक काल में स्त्री के लिए अनुकूल स्थितियों को बताते हुए राजशेखर ने लिखा है कि उस काल में ''पुरुषों के समान स्त्रियाँ भी कवि हो सकती हैं, ज्ञान का संस्कार आत्मा से संबंध रखता है, उसमें स्त्री या पुरुष का भेद नहीं है।''[3] नाट्यशास्त्र में भारतीय समाज में नारी की मंचीय उपस्थिति को अनिवार्य माना गया है। ऋग्वेद के यम–यमी संवादंश के विषय में प्रो. देवेन्द्र राज अंकुर का मानना है ''यम–यमी संवाद–अंश यह संवाद नाटक के जन्म की दृष्टि से तो अपना महत्त्व रखता ही है, लेकिन उससे भी ज्यादा साहित्य में और वह भी नाट्य–साहित्य में नारी–विमर्श का जबरदस्त सूचक है।''[4]

प्राचीनकाल में बौद्ध भिक्खुनियों ने 'थेरी गाथाएँ' लिखी। थेरीगाथाओं में नारी की दशा के ऐतिहासिक महत्व को समझने के लिए उमा चक्रवर्ती का मत दृष्टव्य है– ''वृद्ध बौद्ध भिक्षु 'थेर' (स्थविर) कहलाते थे और वृद्धा बौद्ध भिक्खुनियाँ 'थेरी' (स्थविराएँ) कहलाती थीं। इन वृद्धाओं ने सामाजिक बन्धनों से अपनी मुक्ति के तथा स्त्री–पुरुष की समानता के जो गीत गाये, वे 'थेरीगाथा' कहलाते हैं, क्योंकि उनके इन गीतों को गाने वाली स्त्रियों के आध्यात्मिक अनुभवों के साथ–साथ उनके जीवन की संक्षिप्त कहानियाँ कही गयी हैं। उन कहानियों से तत्कालीन समाज की और उस समय में स्त्री–पुरुष संबंधों की कुछ झलक मिलती है। ... ये रचनाएँ स्त्रियों के अपने लेखन तथा अपने बारे में किये गये लेखन के सबसे प्राचीन प्रमाण हैं। इससे पता चलता है कि स्त्रियों का आध्यात्मिक अनुभव पुरुषों के आध्यात्मिक अनुभव से भिन्न नहीं है। जैसे पुरुष अपनी मुक्ति या निर्वाण के बारे में सोचते हैं, वैसे ही स्त्रियाँ भी सोचती हैं।''[5] ऐसा नहीं है कि बौद्ध काल में पुरुष की तुलना में नारी को समानता का दर्जा प्राप्त हो गया था। शिक्षा के अधिकार ने समाज में नारी भिक्षुणियों को अपनी उपस्थिति को पुनर्परिभाषित करने का एक अवसर प्रदान किया। जिससे यह युग नारी उत्थान के लिए आगे आने वाले समय के लिए प्रेरणास्रोत अवश्य रहा।

प्राकृत काल आते–आते समाज के नीति–निर्धारकों ने स्त्रियों पर रूढ़ियों और अंधविश्वासों का शिकंजा कसना शुरू कर दिया जिससे उसकी स्थिति में तेजी से गिरावट आने लगी। नारी की स्थिति में यह गिरावट हर्षवर्द्धन से लेकर पृथ्वीराज तक के काल में उत्तरोत्तर अवनतिपरक होती गई। हिन्दी साहित्य के आदिकाल तक आते–आते नारी की स्थिति केवल श्रृंगार का पर्याय बनकर रह गयी। आदिकाल में बाह्य आक्रमणकारियों के भय और अनादर के कारण कन्याओं का जन्म अशुभ माना जाता था। इसीलिए उन्हें पैदा होते ही मार भी दिया जाता था। शिक्षा के अभाव ने लोगों को ज्ञानहीन बना दिया जिसके कारण अनेक अंधविश्वासों एवं रूढ़ियों का जन्म हुआ। समाज में पर्दा–प्रथा ने स्त्रियों को बाहरी दुनिया से अलग कर दिया था। स्त्री को भोग्या की दृष्टि से देखा जाने लगा और वह केवल पुरुषों की धन–सम्पत्ति समझी गयी। स्त्रियों का बलात् अपहरण, सुन्दर कन्याओं (राजकुमारियों) के लिए युद्ध इस समय की आम बात थी। सामन्त और राजा एक से अधिक पत्नियाँ रखते थे। भोग–विलास इस काल के सामन्ती जीवन का मुख्य शगल रहा। नारी मात्र विलासिनी और पुरुष की शारीरिक संतुष्टि का साधन समझी जाने लगी थी। इस प्रकार इस काल में नारी की स्थिति, उसका सम्मान व उसकी अस्मिता को पुरुष वर्ग ने कोई विशेष महत्व नहीं दिया। मध्यकालीन समाज में स्त्री पूर्ण रूप से पुरुष के ऊपर आश्रित थी, जिसका सर्वोच्च कर्त्तव्य था अपने पति की सेवा और इच्छा की पूर्त्ति करना। इस तरह मध्यकाल नारी स्थिति की दृष्टि से चिर–पराधीनता का काल भी माना जा सकता है।

मुस्लिम आक्रमणकारियों ने मान–मर्यादा का पर्याय रही स्त्री–अस्मिता को सख्ती से कुचल दिया। बाहरी–भीतरी आक्रमणों ने तत्कालीन नारी की स्थिति को किस कदर दयनीय बना दिया था, इस पर स्वतन्त्र शोध की दरकार है। साहित्य समाज का दर्पण होता है। आदिकाल में अनेक युद्धों का कारण 'स्त्री' रही तो मध्यकाल तक पहुँचते–पहुँचते वह 'भोग्या' रूप में ही अधिक प्रतिष्ठित हुई। वास्तव में यह तत्कालीन भारतीय समाज के विचलन और अस्थिरता का ही परिचायक है। नारी की तत्कालीन स्थिति पर सबसे कठोर प्रहार समाज के बीच से आने वाले संत कवियों ने किया। भक्तिकालीन निर्गुण संतों ने 'नारी की झाँई परत, अंधा होत भुजंग' कहकर उसे महाठगिनी, मोहिनी, नागिन एवं माया उपाधियाँ देकर उससे दूर रहने एवं उसका त्याग करने की बात कही। स्पष्टतः भक्तिकाल में सामाजिक–सांस्कृतिक क्षेत्र में सम्मान न होने के कारण परिवार में उसका आदरणीय स्थान नहीं रह गया था। सामन्तों और अमीरों की विलासोन्मुख वृत्ति के लिए नारी केवल भोग–विलास का साधन थी, जिसका जीवन घर की चौहद्दियों के भीतर समेट दिया गया।

हालाँकि सूरदास रचित 'सूरसागर' के 'भ्रमरगीत सार' में गोपियों की मुखरता और उन्मुक्त प्रेम की अभिव्यक्ति के माध्यम से नारी अस्मिता के चिह्न दिखाए गए हैं। सूर की गोपियाँ उद्धव से– ''लरिकाई को प्रेम, कहौ अलि, कैसे करिकै छूटत?''[6] साफ–साफ कहकर बाल्यावस्था से चले आ रहे साहचर्य प्रेम की अभिव्यक्ति करती है।गोपियाँ अपने वाक–पटुता से परम ज्ञानी उद्धव का सारा ज्ञान काफूर कर देती है। यह भारतीय हिन्दु–संस्कृति में नारी के प्रति शाश्वत सम्मान की दृष्टि है जो अपने अप्रत्यक्ष किन्तु गहरे सन्दर्भों के साथ प्रवाहमान है।

'देहवाद को चुनौती' देते हुए मीरा ऐसे समय में अपनी स्वतंत्रता का शंखनाद करती है जब स्त्री अस्मिता जैसी कोई अवधारणा ही नहीं थी और ना ही उसका साथ देने वाला कोई था। स्त्री के प्रति सदियों से चली आ रही झूठी मान–मर्यादा का परवाह न करते हुए वह खुद को 'अबला बौरानी' मानती है–

''लोक लाज कुल मानि जगत की
ददू बहाय जस पानी
अपने घर का परदा कर ले
मैं अबला बौरानी।''[7]

मीराबाई अपने अप्रतिम साहस और अभिव्यक्ति की अदम्य क्षमता से मध्यकालीन धर्म और समाज को खुली चुनौती देती है। मैनेजर पाण्डेय ने इस संबंध में

लिखा है– ''मीरा ने उस आतंककारी लोक और उसके भयावह धर्म के विरुद्ध खुला विद्रोह किया। उनकी कविता में एक ओर सामंती समाज में स्त्री की पराधीनता और उस व्यवस्था के बंधनों का पूरी तरह निवेश और उससे स्वतंत्रता के लिए दीवानगी की हद तक संघर्ष भी है।''[8] इस तरह मध्यकाल में मीरा, रामो, सहजोबाई सामाजिक जीवन में और नूरजहाँ, मुमताज, रजिया सुल्तान राजनीतिक क्षेत्र में नारी के प्रति होती उपेक्षा के प्रति अपनी अस्मिता और स्वतंत्रता का परिचय देती है और पुरुष प्रभुत्व के लिए चुनौती बनकर सामने आती है।

आधुनिक काल का प्रारम्भ उन्नीसवीं शताब्दी से माना जाता है। उन्नीसवीं सदी के प्रारंभ में नवजागरण की लहर के साथ स्त्री से जुड़े प्रश्नों पर गंभीरता से विचार किया जाने लगा था। स्त्री–जीवन की समस्याओं, कुप्रथाओं, सती–प्रथा, बाल–विवाह, बहु–विवाह पर खुल कर प्रहार हुए। राजाराम मोहन राय, दयानन्द सरस्वती, ईश्वरचन्द्र विद्यासागर, महात्मा गाँधी, ज्योतिबा फुले सरीखे समाज सुधारकों ने स्त्री शिक्षा एवं जागरण के अनेक कार्य किए। विधवा पुनर्विवाह, विधवाओं की जीवन दशा सुधारने एवं औरतों में व्यवसाय के प्रसार–प्रचार हेतु कार्य किये गये। सावित्री फुले, पण्डिता रमाबाई, फ्रान्सिना सोराबजी, रमाबाई पाण्डे, सरोजनी नायडू, विजयलक्ष्मी पंडित और एनी बेसेंट आदि महिलाओं ने नारी अस्मिता की स्वतंत्र एवं प्रतिनिधि आवाज बनकर उसकी अस्मिता से जुड़े प्रश्नों को दशा और दिशा प्रदान की।

स्वतंत्रता संग्राम का राष्ट्रीय आंदोलन नारी अस्मिता के विकास का माध्यम बनकर आया। महिलाओं ने इसमें सक्रिय भूमिका निभाते हुए बढ़–चढ़कर हिस्सा लिया। राष्ट्रीय आन्दोलन में महिलाओं की सक्रिय भागीदारी की चर्चा करते हुए आशारानी व्होरा ने लिखा है– ''नारी जागरण का प्रश्न हो या नारी अधिकारों का या राष्ट्रीय कार्यों में नारी की भागीदारी का, पुरुषों ने आगे बढ़कर उसका आह्वान किया और दोनों कंधे से कंधा मिलाकर आजादी की लड़ाई व समाज–सुधार के कार्यों में भाग लेते रहे।''[9] इस तरह आजादी की लड़ाई में स्त्री–चेतना का एक भव्य रूप हमारे सामने आता है जिसमें वह चारदीवारी की लक्ष्मण रेखाएँ लाँघते हुए पुरुषों के साथ संघर्ष में शामिल होती है और अपने सामर्थ्य का भरपूर परिचय देती है।

स्वतंत्र भारत के संविधान में मौलिक अधिकारों के रूप में स्त्री–पुरुष पूर्ण समानता का कानून बना। उत्तराधिकार अधिनियम–1956 के तहत लड़की को लड़के के समान 'सहउत्तराधिकारी' माना गया। संविधान में स्त्रियों को 'मताधिकार' प्रदान किया, साथ ही विवाह अधिनियम 1955 में विशेष आधारों पर तलाक की अनुमति दी गई। बहुविवाह पर रोक लगाई गई। अनुच्छेद 39–51 में स्त्री–पुरुष के 'समान कार्य–समान वेतन' का अधिकार दिया गया। व्यवसाय के क्षेत्र में प्रवेश से स्त्री को आर्थिक स्वतंत्रता मिली। आर्थिक स्वतंत्रता ने उसे 'देवी' या 'दानवी' के परम्परागत रूप से निकालकर 'मानवी' का रूप दिया।

अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर संयुक्त राष्ट्र संघ ने वर्ष 1975 को 'अंतर्राष्ट्रीय महिला वर्ष' घोषित किया था। इससे स्त्री अस्मिता से जुड़े मुद्दों को नया आयाम मिला। महिलाओं के जीवन से जुड़े अनेक पहलुओं पर चर्चा हुई और एक नई सोच का जन्म हुआ। वर्तमान में स्त्री के प्रति बदलते नजरिये को रेखांकित करते हुए प्रभा खेतान ने लिखा है– ''आज स्त्री ने सदियों की खामोशी तोड़ी है उसकी नियति में बदलाव है उसके व्यक्तिगत जीवन का उद्देश्य, दर्शन, उसका मन–मिजाज सभी तो बदल रहा है।''[10]

अब महिलाओं के लिए समुचित विकास एवं सशक्तिकरण का वातावरण बनता जा रहा है। महिलाएँ पुरुषों के साथ राजनीति, सत्ता, प्रशासन, पुलिस, खेलकूद, मीडिया एवं रचनाकर्म आदि क्षेत्रों में कदम से कदम मिलाकर अपनी उपस्थिति व अस्मिता का अहसास करा रही हैं। अब नारी ने अपने अस्तित्व और अस्मिता को पहचानते हुए परम्परागत रूढ़ ढाँचे को तोड़ा है। इस तरह यह आधी आबादी सकारात्मक संघर्ष के बाद विकासोन्मुख आमूल–चूल परिवर्तन के लिए उद्यत है।

निष्कर्ष

वर्तमान भारतीय स्त्री–चितंन ने समाज को सोचने और आगे बढ़ने के नए रास्तों की खोज की है। अन्तरिक्ष से लेकर ओलम्पिक तक स्त्री शक्ति का विराट वैभव सामाजिक परिप्रेक्ष्य में स्पष्ट दिखाई देता है। सामाजिक सुरक्षा के क्षेत्र में यदि स्त्री–अस्मितावादी आन्दोलन ने अपनी सही राह पकड़ ली तो भारत में स्त्री–सफलता के नए ग्रंथ लिखे जाने निश्चित है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. *नारीवादी राजनीतिः संघर्ष एवं मुद्दे; साधना आर्य, निवेदिता मेनन, जिनी लोकनीता, हिन्दी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय, दिल्ली, सं.–2006, पृष्ठ 10*
2. *भारतीय नारी दशा और दिशा, डॉ. आशारानी व्होरा, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, सं. –1982, पृष्ठ 10*
3. *काव्यमीमांसा–राजशेखर, पृष्ठ अध्याय–10*
4. *भारतीय रंगमंच में नारी–विमर्श : देवेन्द्र राज अंकुर, वसुधा–पत्रिका, अंक–59–60, पृष्ठ 457*
5. *आज का स्त्री आन्दोलन, सं. रमेश उपाध्याय, शब्द संधान, दिल्ली, सं.–2004, पृष्ठ 9–10*
6. *भ्रमरगीत–सार, सं.–आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, लोकभारती प्रकाशक, इलाहाबाद, सं.–2007, पृष्ठ 76*
7. *मीराबाई की पदावली; परशुराम चतुर्वेदी, हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग सं.–1993, पृष्ठ 76*
8. *भक्ति आंदोलन और सूरदास का काव्य–मैनेजर पाण्डेय, वाणी प्रकाशन, दरियागंज, दिल्ली, सं.–1993, पृष्ठ 28*
9. *नारी शोषण– आइने और आयाम; आशारानी व्होरा, नेशनल पब्लिशिंग हाऊस, दिल्ली, सं.–1982, पृष्ठ 249*
10. *उपनिवेश में स्त्री; प्रभा खेतान, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, सं.–2004, पृष्ठ 53*